International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
www.hindijournal.com
Volume 1; Issue 1; November 2015; Page No. 34-36

संस्कृत भाषा साहित्य का इतिहास

[1] Sanakalli Leela, [2] Dr. Sumitra Choudhry

[1] Research scholar opjs university Churu rajasthan
[2] Asst-professor opjs university Churu Rajasthan

संस्कृत भाषा का साहित्य संसार की अन्य भाषाओं के साहित्य की अपेक्षा अधिक व्यापक है, क्योंकि न्यूनतम चार सहस्र वर्षों का (2000 ई. पू. से आधुनिक युग अर्थात् बीसवीं शताब्दी तक का) साहित्य इसमें निहित है। इतने लम्बे काल के साहित्यिक क्रिया कलाप को समाविष्ट करना एक इतिहासकार के लिये कठिन कार्य है। इसलिए आज तक संस्कृत साहित्य के इतिहास का लेखन प्रायः दो वर्गों में इस दीर्घ कालावधि का विभाजन करके ही होता रहा है। वैदिक साहितय (2000 ई.पू. से 500 ई. तक) तथा लौकिक साहित्य (500 ई.पू. से आधुनिक काल तक) इन वर्गों में वैदिक साहित्य का इतिहास क्रमशः विभित्र युगों में विकसित होने वाले साहित्यिक उद्‌गम को आधार बना कर लिखा गया है। इन युगों में भाषा का परिवर्तन स्वाभाविक गति से होता था, साहित्य रचना भी नये–नये प्रकारों में होती रही थी। सामान्य रूप से इस काल खण्ड के इतिहास को निम्नलिखित उपखण्डों में विभक्त किया जाता है :
(1) संहिता काल
(2) ब्राह्मण काल
(3) अरण्य काल
(4) उपनिषद् काल
(5) सूत्रकाल।[2]

(1) वैदिक काल (200 ई.पू. से 500 ई.पू.): वैदिक साहित्य के अंतर्गत वैदिक संहिताएँ आती हैं। जिसमें वेद का अर्थ, वेदों का स्वरूप, वेदों के महत्त्व का वर्णन किया जाता है।
वेदों का अर्थ–ज्ञानार्थक– "विद् धातु) से निष्पत्र "वेद" शब्द का अर्थ 'ज्ञान' ही है। यह ज्ञान समस्त आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान के स्रोत या आधार के रूप में है। इसे ईश्वरीय ज्ञान कहें या प्राचीनतम ऋषियों के द्वारा अपनी प्रतिभा से प्राप्त ज्ञान कहें "वेद" शब्द के वाच्यार्थ के रूप में ही है। समस्त भारतीय विद्या के उत्स के रूप में स्थित यह ज्ञान अभ्यर्हित है। पूज्य कोटी में स्थापित है। यह भारत के ही नहीं अपितु जगत के प्राचीनतम साहित्य के रूप में आदि–संस्कृति के ज्ञान का स्रोत है। वैयाकरण लोग "वेद" शब्द का निर्वचन भाव अर्थ में (ज्ञान या जानना) [3] नहीं करके करण अर्थ में ज्ञान का साधन करते हैं। विद्यतेज्ञायतेऽनेनेतिवेदः अर्थात् जिसके द्वारा कोई ज्ञान प्राप्त किया
जाये "वेद" है।
वेद परम प्रमाण अर्थात् आगम या शब्द प्रमाण में उत्कृष्ट हैं। मीमांसको ने कहा है कि प्रत्यक्ष और अनुमान से हम जिस उपाय या ज्ञान को नहीं पा सकते उसे वेद बता सकते हैं। अर्थात् वेद से ज्ञान मिलता है। जिसे प्राप्त करने के लिए अन्य कोई साधन इस जगत में नहीं।

प्रत्यक्षेणानुनित्या व यस्तूपायो न विद्यते।
एवं विदन्ति तस्माद् वेदस्य वेदता।। [4]

वेदों का स्वरूप : प्राचीन परम्परा में वेदों के अन्तर्गत मन्त्र और ब्राह्मण दोनों बाग निहित है।[5]
मन्त्रब्राह्मणोर्वेदनामधेयम् मन्त्र उसे कहते हैं, जिसका उच्चारण करके यज्ञ–यागों का अनुष्ठान किया जाता है और जिसमें यज्ञ में भाग लेने वाले देवता की स्तुति की जाती है, जिसमें दूसरी ओर यज्ञ के क्रिया–कलाप एवं उनके प्रयोजनों की व्याख्या करने वाले वेद भाग को ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण के तीन भाग हैं। ब्राह्मण, अरण्य तथा उपनिषद् इस प्रकार वैदिक वाङमय को चार भागों में बांटा गया है–
1. मंत्र भाग (संहिता)
2. ब्राह्मण
3. आरण्यक
4. उपनिषद्।

वेदों का महत्त्वः साहित्य के रूप में सम्पूर्ण–वाङमय महत्त्वपूर्ण हैं। आवश्यकता के अनुसार वेद साहित्य बढ़ता गया और ब्राह्मण, आरण्य तथा उपनिषद् साहित्य क्रमशः विकसित हुए। प्राचीनकाल से लेकर आज तक वेद–वाङमय सम्पूर्ण विश्व को विविध उपदेश देता है इसलिए इसके महत्त्व को अंकित करना प्रासंगिक है। भारतीय साहित्य में नास्तिकों ने वेद की निन्दा भले ही की है किन्तु साहित्य जन–सामान्य का बहुसंख्यक वर्ग उसकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से करता रहा है। आस्तिक दर्शन ईश्वर की वाणी के रूप में या अपौरुषेय शब्दराशि के रूप में संसार के समस्त अर्थ निर्मित हुए हैं। "त्रयी विद्या" धर्म और अधर्म के बीच भेद कर निरुपण करती है। वेदों से लोग अपने जीवन–दर्शन को संचालित कर सकते हैं।[6]
वेदों को "भारतीय साहित्य" का आधार माना जाता है। अर्थात् परवर्ती संस्कृत में विकसित प्रायः समस्त विषयों का स्रोत वेद ही है। काव्य, धर्मशास्त्र, व्याकरण आदि सभी क्षेत्रों पर वेद की गहरी छाप है। इन सभी विषयों का अनुशीलन ऋग्वेद से ही आरंभ होता है। काव्य के क्षेत्र में ऊषा देवी की रमणीय शोभा का, संसार का स्वरूप, सृष्टि, प्रेत्याभाव (पुनर्जन्म), परमेश्वर इत्यादि का निरुपण ऋग्वेद से ही उपक्रान्त होता है। आर्यों के आचार–विचार का साक्षात्कार सर्वप्रथम वेदों में ही प्राप्त होता है। भाषा–चिन्तन भी ऋग्वेद के मन्त्रों से ही आरम्भ होकर अन्य संहिताओं तथा ब्राह्मणों तक व्याप्त है। वेद का वेदान्त इस विषय में भी निहित है कि समस्त परवर्ती ज्ञान का बीज यहाँ व्यवस्थित हैं।
वेदों के आधार पर तत्कालीन समाज और आर्यों के आवास क्षेत्र का इतिहास जाना जा सकता है। इस प्रकार भारतीय इतिहास स्रोतों में वेद अग्रण्य है। प्राचीन परम्परा के विद्वान् वेदों में इतिहास ढूंढने की कल्पना को भले ही अपौरुषेयता में बाधक समझें किन्तु आज भी वैदिक वाङ्मय को भारतीय–इतिहास की अमूल्य निधि मानते हैं।8

लौकिक साहित्य (500 ई.पू. से आधुनिक काल तक): लौकिक साहित्य के अन्तर्गत वैदिक भाषा के संधि युग का वर्णन किया गया है।

सदूषणापि निर्धोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्तै कृता येन रम्पा रामायणी कथा।।

संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकि कृत "रामायण" आदि काव्य समझें जाते हैं तथा वाल्मीकि "आदि कवि" माने जाते हैं। कथा प्रसिद्ध हैं, कि जब व्याघ्र के बाण से विधे हुए क्रौञ्च पक्षी के लिये विलाप करने वाली कौञ्ची का करुण शब्द ऋषि ने सुना तो उनके मुँह से अकस्मात् यह श्लोक निकला–

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ् चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।

जिसका आशय यह है कि हे निषाद! तुमने काम से मोहित इस कौञ्च पक्षी को मारा है। अतः तुम सदा के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त न करो। महर्षि की करुणामयी वाणी सुनकर स्वयं ब्रह्मा उपस्थित हुए और उन्होंने रामचरित लिखने को कहा। रामायण की रचना इसी प्रेरणा का फल है। वाल्मीकि ने अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है। परन्तु लौकिक संस्कृत में व्यवहृत होने वाले सम अक्षर से युक्त अनुष्टुप् का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि ने ही किया, जिसमें लघु–गुरु का निवेश नियमबद्ध था।[9]
इस आदिकाव्य को "चतुर्विंशती साहस्री" कहते हैं। अर्थात् इसमें 28 हजार श्लोक हैं। ठीक उतने ही हजार जितना "गायत्री" के अक्षर हैं। प्रत्येक हजार श्लोक का प्रथम अक्षर गायत्री मंत्र के ही अक्षर से क्रमशः आरम्भ होता है। ऐसा विद्वानों का विचार हैं। विद्वान् लोग इस ग्रन्थ में स्थान–स्थान पर सेफ्न भी मानते हैं, परन्तु काव्य में एकता का कहीं भी अभाव नहीं दिखाई पड़ता है। ग्रन्थ में पाठ भेद भी कम नहीं है। उत्तरी भारत, बंगाल तथा काश्मीर के जो संस्करण उपलब्ध होते हैं। उसमें पाठभेद बहुत ही बाधक है। उसमें एक दूसरे से श्लोकों का ही अन्तर नहीं है। प्रत्युत्तर कहीं–कहीं तो सर्ग के सर्ग भिन्न दिखाई पड़ते हैं। रामायण के अनेक टीकाकार भी हुए हैं। ये हैं शृंगार तिलक (गोविन्दराजकृत) जिसमें नागेश भट्ट की "तिलक" सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

संस्करणः रामायण के अनेक संस्करण उपलब्ध होते हैंः

1. बम्बई से प्रकाशित देवनागरी उत्तरी भारत में इसी संस्करण का विशेष प्रचलन है।
2. बंगाल संस्करण (कलकत्ते से प्रकाशित) सि पर लोकनाथ की प्रसिद्ध टीका है।
3. काश्मीर संस्करण, जिसका प्रचलन उत्तर पश्चिमीय भारत में विशेष रूप से था।
4. दक्षिण भारत संस्करण (मद्रास से प्रकाशित) आरम्भ के तीनों संस्करणों में पर्याप्त भिन्नता है। वाल्मीकि का मूल रामायण कौन–सा था? निर्णय करना नितान्त कठिन है। कुछ विद्वान बंगाल संस्करण को अधिक पुराण तथा विशुद्ध मानते हैं, तो कुछ देवनागरी संस्करण को इस विषय के लिए इन संस्करणों का विशेष मन्थन तथा अनुशीलन उपेक्षित हैं।

रचनाकालः वाल्मीकि रामायण के निर्माण का समय बाह्य एवं अन्तः साक्ष्यों के आधार पर निश्चित किया जा सकता है। राम वैदिक, बौद्ध तथा जैन–धर्मों में मर्यादा पुरुष माने जाते हैं। बौद्ध कवि कुमार लाल (100 ई.) की "कल्पना मण्डतिका" में रामायण के सर्वसाधारण में वाचन का उल्लेख है। जैन कवि विमलसूरि ने राम कथा को 'पउम्–चरिय' नामक प्राकृत भाषा के महाकाव्य में निबद्ध किया है। यह काव्य वाल्मीकि रामायण को आदर्श मानकर जैन धर्मावलम्बियों की इस मर्यादा पुरुष के चरित से परिचय प्राप्त करने के लिए लिखा है। महाकवि अश्वघोष (78ई.) ने अपने 'बुद्धचरित' में सुन्दरकाण्ड की रमणीय उपमाओं और उत्प्रेक्षताओं को सिद्ध किया है। बौद्धों के अनेक जाकतों में रामकथा का स्पष्ट निर्देश है। 'दशरथ जातक' में रामकथा का पूरा आख्यान ही है। जिसमें रामपण्डित बुद्ध के ही पूर्वकाल प्रतिनिधि माने जाते हैं। इन बाह्य प्रमाणों के आधार पर रामायण तृतीय शतक ई. पू. से भी पहले की रचना सिद्ध होती है।[10]

रामायण का मुख्य रस : आनन्द वर्धन ने स्पष्टतः 'करुण' को ही रामायण का मुख्य रस कहा है। रामायण का आरम्भ 'करुण' से होता है तथा राम के सामने सीता के पृथ्वी के भीतर अन्तर्धान होने के दृश्य से रामायण का अन्त भी 'करुण' से होता है।

रामायण हि करुणों रसः स्वयमादिकविना सूचितः श्लोकत्व
मागताः इत्येवंवादिना।
निर्व्यूढ़श्च स एवं सीताअत्यन्तवियोगपर्यन्तमेव
स्वप्रबन्धमुपरचयता।

महाभारत

महाभारत के कर्त्ताः प्रसिद्ध है कि "महाभारत में एक लाख अनुष्टुप छन्द है तथा इसके रचयिता महर्षि द्वैपायन व्यास है। इनकी माता का नाम सत्यवती था। मल्लाहों के राजा दास के द्वारा जन्मकाल से ही इनका पालन पोषण हुआ था। यमुना के किसी द्वीप में जन्म के कारण व्यास 'कृष्णमुनि' कहलाते थे। शरीर के रंग के कारण 'कृष्णमुनि' तथा यज्ञीय उपयोग के लिए एक वेद को चार संहिताओं में विभाग के कारण वेदव्यास के नाम से विख्यात थे। इन्होंने तीन वर्षो तक सतत् परिश्रम से इस अनुपम ग्रन्थ की रचना की।

त्रिभिवर्षौं सदोत्थायी कृष्ण द्वपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवाननिदमुत्तमम्।।

आजकल महाभारत में एक लाख श्लोक मिलते हैं, इसलिए 'शतसाहस्र संहिता' कहते हैं। किन्तु पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि 'महाभारत' की रचना कई शताब्दियों में अनेक कवियों की लेखनी से हुई है।
इस प्रकार महाभारत के तीन रूपांतर हुए, इस ग्रन्थ के विधान हैं। वह 'महाभारत' का मूल प्रतीत होता है पाण्डवों के विजय–वर्णन के कारण ही इस ग्रन्थ का ऐसा नामकरण किया गया है। इस 'जय' नामक ग्रन्थ में 8, 8000 श्लोक थे।

अष्टौ श्लोक सहस्राणि अष्टौश्लोकशतानि च।
अहं वेध्मि शुको वेत्ति संजयों वेति वा ना वा।

2. भारतः 'जय' के अनन्तर विकसित होने पर इस ग्रन्थ का अभिद्यान भारत पड़ा। भारत नाम से प्रतीत होता है कि यह भारतवंशी कौरवों तथा पाण्डवों के युद्ध का वर्णन परक ग्रन्थ था। उस समय उसका प्रमाण केवल चौबीस सहस्र श्लोक था और यह आख्यानों से रहित था।

चतुर्वितसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्
उपाख्यानैर्षिना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।। (महाभारत)

महाभारतः सौति ने 'भारत' में और भी अनेक आख्यानों और उपाख्यानों को जोड़कर तथा अठारह पर्वो में विभाजित कर उसे एक विशालकाय 'महाभारत' का रूप दे डाला साथ ही उसमें 'हरिवंश' नाम का एक बृहत् परिशिष्ट भी जोड़ दिया। इस प्रकार 'महाभारत' एक लाख श्लोकों से युक्त प्रकाण्ड ग्रन्थ बन गया।
किन्तु 'महाभारत' के अनुसार वास्तविक श्लोक संख्या हरिवंश–साहित्य 16,244 हैं, क्योंकि अनुक्रमणिकाध्याय में दी हुई सूची के अनुसार 'महाभारत' में कुछ 1920 अध्याय और 84,244 श्लोक संख्या है। आजकल की कई प्रतियों में पूरे एक लाख तथा इससे भी अधिक श्लोक मिलते हैं।

महाभारत का समयः सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में भारत या 'महाभारत' का कोई उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु 'ब्राह्मण' ग्रन्थों में वेदों में भी कुरु और पांचाल नामक दो जातियों का वर्णन मिलता है तथा कुरुक्षेत्र, जनमेजय, दुष्यन्त पुत्र भरत, धृतराष्ट्र का भी उल्लेख है, जिसमें कौरवों का नाश हो गया। पाणिनी ने युधिष्ठिर भीम, विदुर तथा 'महाभारत' इन शब्दों की व्युत्पत्ति समझाई है और पतंजलि (150 ई.पू.) ने तो 'महाभारत' के कुछ आख्यान तथा उसका मूल ऐतिहासिक कथानक उत्तर वैदिक काल (लगभग 1000 ई.पू.) में प्रचलित हो चुका था। यूरोपीय विद्वानों का यह कथन है, कि 'महाभारत' का वर्तमान रूप ईसा की चौथी शताब्दी तक निर्धारित हो चुका था। इस समर्थन में वे कुछ शिलालेखों तथा साहित्यिक प्रमाणों का आश्रय लेते हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक कुमारिल भट्ट (700 ई.) ने प्राय. सभी पर्वों के उध्वरण दिये हैं। सुबन्धु और बाणभट्ट (600–640ई.) भी महाभारत के काव्य रूप शिलालेख से यह प्रमाणित होता है कि छठी शताब्दी में महभारत का प्रचार भारत के बाहर दूसरे देशों में भी हो चुका था। 450–500 ई. के आसपास के कई दानपात्र मिलते हैं। जिसमें महाभारत के श्लोक शास्त्रीय प्रमाण मानकर उद्धत किये गए हैं। 442 ई. के गुप्तकालीन शब्द लेख में महाभारत का उल्लेख 'शत–साहस्यां संहितामं' इन प्रकार किया गया है। इन सब प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाभारत का वर्तमान रूप 400 ई. पूर्व तक स्थिर हो चुका था।

इसके विपरीत श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य महोदय ने अपनी पुस्तक 'महाभारत मीमांसा' में एक ऐसे प्रबल प्रमाण का उल्लेख किया है, जिसके आधार पर महाभारत का रचनाकाल और भी कई सौ वर्ष पहले का स्थिर होता है। वैद्य महोदय का कहना है कि हाप्किस जैसे विद्वानों ने डायोकायसोस्टोम नामक उस यूनानी लेख के विषय में कुछ भी पता नहीं, जो सन् 50 ई. में दक्षिण के पांड्य देश में आया था। उसने अपने संस्मरण में लिख है कि भारत में एक लाख श्लोकों वाले महाग्रन्थ का पता चला है। इससे सिद्ध होता है कि उस समय महाभारत का प्रचार समूचे भारत में हो चुका था तथा उसकी रचना 50 ई. के पूर्व हो चुकी थी। अतः महाभारत के समय की नीच की मर्यादा ईस्वी सन् के बाद की नहीं हो सकती। 'महाभारत' में युद्ध और बौद्ध धर्म सम्बन्धी कई सिद्धान्तों का तथा भवनों का भी उल्लेख कई बार किया गया है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'महाभारत' कई सिद्धान्तों का तथा भवनों का भी उल्लेख कई बार किया गया है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'महाभारत' की रचना बौद्ध धर्म उत्पत्ति और विस्तार तथा सिकन्दर के आक्रमण (320 ई.पू.) के बाद ही हुई होगी। इस प्रकार यह सिद्ध होता है। 'महाभारत का एक लाख श्लोकों वाला वर्तमान रूप 320 ई.पूव. से लेकर 50 ई. के बीच में निर्धारित हो चुका था।

निष्कर्षः प्रस्तुत' शोधपत्र में संस्कृत साहित्य का जो विकास आधुनिक काल के पूर्व हुआ, उसका अध्ययन किया गया है। इस काल के इतिहास लेखन को विद्वानों ने दो भागों में विभाजित किया है। एक वैदिक साहित्य तथा दूसरा लौकिक साहित्य कहलाता है। इस कालखण्ड के इतिहास को संहिता काल, ब्राह्मण काल, अरण्य काल, उपनिषद् काल और सूत्रकाल आदि भागों में विभक्त किया गया है। वैदिक काल इसीलिए कहा जाता है कि इसमें वेदों की रचना की गई थी। लौकिक साहित्य में लौकिक वैदिक भाषा सम्मिलित है। इसे संधि युग कहा गया है। विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि एक तरह से संस्कृत साहित्य विवेच्य काल में अपनी प्रारंभिक अवस्था में था, किन्तु यह भी सच है कि इस काल में जो रचनाएँ लिखी गई हैं, वे कालजयी और भारतीय संस्कृति की धरोहर रही हैं। उनमें भारतीय जनमानस की जीवित आस्था देखी जा सकती है। एक तरह से उसे जीवन दर्शन कह सकते हैं। वेद, उपनिषद् आदि ने ईश्वर की व्याख्या की। रामायण ने पारिवारिक जीवन का मार्ग प्रशस्त किया। महाभारत और गीता ने कर्म करने की प्रेरणा दी है, जो कि आी भी प्रासंगिक है और आगे भी रहेगी।

संदर्भ

1. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2009, पृ.1,
2. संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका, बाबूराम सक्सेना, साहित्य संस्थान, तेरहवां संस्करण 1975, पृ. 37,
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, चौखम्बा भारतीय अकादमी, प्रथम संस्करण 1919, पृ. 6,
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, चौखम्बा भारतीय अकादमी, प्रथम संस्करण 1919, पृ. 29,
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, चौखम्बा भारतीय अकादमी, प्रथम संस्करण 1919, पृ. 29,
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, चौखम्बा भारतीय अकादमी, प्रथम संस्करण 1919, पृ. 30,
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, चौखम्बा भारतीय अकादमी, प्रथम संस्करण 1919, पृ. 31,
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, चौखम्बा भारतीय अकादमी, प्रथम संस्करण 1919, पृ. 32,
9. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, डॉ. मधु सत्यदेव, नीलकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993, पृ. 34,
10. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, डॉ. मधु सत्यदेव, नीलकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993, पृ. 35